



## अंग जनपद की गणिका देवदत्ता: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० मिथुन कुमार

सहायक प्राध्यापक, एस.बी.ए.एन कॉलेज, दरहेटा लारी, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया बिहार, भारत

DOI: <https://doi.org/10.66856/ijhssr.2026.12.4.12356>

## सारांश

भारत के राजनैतिक इतिहास का प्रारंभ सामान्यतः छठी शताब्दी ईसा पूर्व से माना जाता है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार छठी शताब्दी ईसा पूर्व में आर्य जातियों के परस्पर विलीनीकरण से जनपदों का विस्तार हुआ और क्रमशः महाजनपद बने।<sup>[1]</sup> इन 16 महाजनपदों में वज्जि एवं मल्ल में गणतंत्रात्मक व्यवस्था थी, जबकि भोज में राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। महापरिनिर्माणसुत्त में छह महानगरों की सूचना मिलती है – चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, काशी, कौशांबी तथा साकेत।<sup>[2]</sup> जिसमें अंग महाजनपद की राजधानी चम्पा थी, जो बुद्ध के समय तक भारत के छह महानगरों में से एक थी। ऐसा माना जाता है, कि चम्पा, पाटलिपुत्र से भी पहले बस चुकी थी। अंग महाजनपद की राजधानी रही 'चम्पा' नगर की पहचान बुद्ध के पूर्व से ही एक समृद्ध आर्थिक-व्यापारिक केंद्र के तौर पर बन चुकी थी।<sup>[3]</sup> इसी प्राचीन अंग जनपद की राजधानी चम्पा नगरी में देवदत्ता नामक गणिका रहती थी। चम्पा नगरी में सामान्य लोगों द्वारा गणिका आदरणीय मानी जाती थी। वात्स्यायन के अनुसार – चम्पा की गणिकाएँ सुशिक्षित और सुसंस्कृत होती थी। गणिका को गणिकाओं के आचार-व्यवहार की शिक्षा दी जाती थी।

**मूल शब्द:** अंग जनपद, देवदत्ता, प्राचीन भारतीय समाज, गणिका संस्था, सांस्कृतिक इतिहास

वैश्यावृत्ति भारत में एक प्राचीन संस्था रही है। ऋग्वेद में नृत्तु शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ नृत्तकी होता है। वाजसनेयी संहिता<sup>[4]</sup> में वैश्यावृत्ति को एक पेशा स्वीकार किया गया है। स्मृतिग्रंथों में इस पेशे को निन्दित माना गया है। जातकों में वैश्याओं को उदार बताया गया है और उन्हें आदर की दृष्टि से देखा गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार- वैश्याएँ सम्मानपूर्वक देखी जाती थी और वे राजा द्वारा पृथक् क्षेत्र, चामर और सुवर्ण-घट को धारण करती थी।

वात्स्यायन के कामसूत्र में वैश्याओं पर छः अध्याय लिखे गए हैं।<sup>[5]</sup> वैश्याओं को कुम्भ दासी, परिचारिका, कुलटा, स्वेरेणी, नटी, शिल्कारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीवा और गाणिका इन नौ वर्गों में विभाजित किया गया है। इनमें सबसे अधिक सम्मान योग्य वैश्याएँ होती जो राजा द्वारा पुरस्कृत की जाती तथा बुद्धिमान व्यक्ति जिनकी सराहना करते थे। गणिका गण की सदस्य मानी जाती थी। उसका रूप – लावण्य आर्थिक अथवा राजनीतिक गणों से सम्बन्धित व्यक्तियों की सर्वसाधारण सम्पत्ति थी।

संस्कृत साहित्य की ज्ञानपरम्परा अनादि काल से सम्पूर्ण विश्व को अभिसिञ्चित कर रही है। इस भाषा की रमणीयता यह है कि इसमें समाज के सभी अङ्गों को ध्यान में रखकर साहित्य की रचना की गयी है। वस्तुतः साहित्य समाज का दर्पण होता है, जो विसंगतियाँ, प्रवृत्तियाँ व समस्याओं को ध्यान में रख आगे बढ़ता है। संस्कृत साहित्य इस दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध और महत्वपूर्ण है। इसमें समाज के विविध विसंगतियों विकृतियों व प्रवृत्तियों का वर्णन वृहद् रूप में प्राप्त होता है। इन विकृतियों में प्रमुख एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त निन्दनीय विकृति रूपव्यापार है, जो प्राक्काल से ही समाज में प्रचलित है। इस कार्य में संलिप्त स्त्रियों के लिए संस्कृत साहित्य व कोश ग्रन्थों में अनेकों नाम उपलब्ध होते हैं 'वारस्त्री गणिका वैश्या रूपाजीवा'<sup>[6]</sup> इत्यादि जो आज भी समाज में प्रचलित है। किन्तु व्यापार की दृष्टि से समनार्थक रूप में प्रयुक्त होने वाले इन शब्दों में भिन्नता है। वात्स्यायन के अनुसार- 'अभिरभ्युच्छिता वैश्या शीलरूपगुणान्विता। लभते गणिका स्थानं च जनसंसदि।'<sup>[7]</sup> अर्थात् गुण, शील और रूप से सम्पन्न वैश्या इन कलाओं द्वारा उत्कर्ष प्राप्त कर गणिका पद ग्रहण करती है। इससे स्पष्ट होता

है कि रूपव्यापार में प्रवृत्त स्त्रियों में गणिका श्रेष्ठ मानी जाती थी। संस्कृत साहित्य में जब गणिकाओं की स्थितियों एवं स्वरूप का विमर्श करते हैं तो देखते हैं कि यद्यपि नारी के गणिका, वैश्या, रूपजीवा इत्यादि रूप आदर्श एवं अनुकरणीय नहीं माने गये हैं भारतीय समाज के प्रत्येक कालखण्ड में इनका विशेष स्थान रहा है। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में भी कुछ ऐसी नारियाँ थीं, जो सभी की थी वे ही परवर्ति काल में गणिकायें (वैश्यायें) कहलायीं। " परा शुभ्रा अयासो यग्या साधारण्येव मरुतो मिभक्षुः।<sup>[8]</sup> " अथर्व संहिता में भी नग्नी, महानग्नी, पुश्चली आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जिससे तात्कालीन समाज में गणिका वृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि तात्कालीन समाज में गणिकाओं की स्थिति वर्तमान समय की अपेक्षा काफी अच्छी थी। उन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। इन्हें अपना जीवनयापन करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। गणिकायें रूप, शील और गुणों से सम्पन्न होती थी। राजा और गुणवान् व्यक्ति इनकी पूजा करते थे तथा आदर सत्कार करते थे। " पुजिता सा सदा राज्ञा गुणवदिभश्च संस्तुता। प्रार्थनीयागम्या च लक्ष्यभूता च जायते।"<sup>[9]</sup> प्राक्काल में इनका मुखदर्शन शुभ माना जाता था संस्कृत साहित्य के आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में लंकाविजयोपरान्त रामराज्याभिषेक के समय गणिका उपस्थिति का वर्णन प्रान होता है। स्तुति एवं पुराणों के जानकार सूत, समस्त वैतालिक, सभी मन्त्रीगण, ब्राह्मण इत्यादि लोग राम जी के मुख – दर्शन हेतु नगर गणिकाएँ, राजपानिया से बाहर चले। " सर्वे वादित्र कुशला गणिकाश्चापि संघशः। अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं ' मुखम्। " <sup>[10]</sup> इतना ही नहीं प्राचीन समय में युद्ध में वीरों को प्रोत्साहित एवं मनोरंजनार्थ गणिकाओं को राजा के साथ भेजा जाता था। ऐसी अनेकों घटनाएँ संस्कृत काव्यों एवं नाटकों में प्राप्त होती हैं। वाल्मीकि रामायण में ऐसा आदेश प्राप्त होता है कि " रूप से आजीविका चलाने और सत्य वचन बोलने वाली स्त्रियाँ तथा महाधनी व विक्रय – योग्य द्रव्यों का प्रसारण करने वाले वैश्य श्रीराम की सेना को सुशोभित करें।<sup>[11]</sup> शिशुपालवध का यह श्लोक भी इस बात की पुष्टि करता है। " अस्तीर्णतत्परचितावसथः क्षणेन वैश्याजनः —

तनवप्रतिकर्मकाम्यः। खिन्नानखिन्नमतिरामतितो मनुष्यान् प्रत्यग्रहीचिवरनिविष्ट इवोपचारैः।<sup>[12]</sup> संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि गणिकार्ये कर्तव्य परायण होती थीं। अतएव राजाओं और सामन्तों का भी गणिकाओं के प्रति कुछ कर्तव्य थे। जैसे गणिकाओं को विविध कलाओं में पारङ्गत कराना। अर्थात् राजा द्वारा गणिका की शिक्षार्थ शिक्षक नियुक्त किए जाते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार अर्थात् गणिकाओं के लिए एक सहस्त्र पण की व्यवस्था भी की गयी थी। “सौभाग्यालंकारवृत्ता सहस्त्रेण वादं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत्।<sup>[13]</sup>” इस प्रकार सौन्दर्य से पूर्ण गणिकार्ये किसी भी पुरुष को अपने पाश में बाँधने की कला में निपुण व चौसठ कलाओं में निष्णात् और पारङ्गत होती थीं। कहा भी गया है “हारिण्यश्चङ्कुलतरा बहुलतरङ्गाश्च निम्नगामिन्यः। नद्य इव जलधिमध्ये वेश्याहृदये कलाश्चतुःषष्टिः।।<sup>[14]</sup>” सभी कलाओं में निपुण गणिकार्ये भी राजा के लिए सहायक सिद्ध होती थीं। राजा इनका प्रयोग अपनी विभिन्न योजनाओं की पूर्णता के लिए करते थे। रूपवाश में किसी भी पुरुष को बाँधने में पारङ्गत गणिका पुरुषों को अपने वश में कर के राज्यकार्य सिद्ध करती थी। भगवान् बुद्ध को वैराग्य जीवन से निवृत्ति हेतु उनके पिता के द्वारा गणिकाओं की नियुक्ति की गयी थी। यथा “वागभिः कलाभिललितैश्च हावैर्मदै सरलैर्मधुर चहासैः। तं तत्र नार्यो रमयाम्भूलुर्भवश्चितैरर्धनिरीक्षितैश्च।।<sup>[15]</sup>” लोकजन में भी गणिकाओं का महत्व था। सामाजिक शिष्टाचार और कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए राजकुमार और राजकुमारियाँ गणिकाओं गणिकाएं उस राज्य की समृद्धि के पास जाती थी। राज्य में उपस्थित सौन्दर्य औश्र सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती थी। इसका प्रमाण समाज के सामने मर्यादित समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने वाला काव्य रामायण में मिलता है। “रम्यचत्वरसंस्थानां संविभक्तमहापथाम् हर्म्यप्रसादसम्पन्नां गणिकावदशोभिताम्।।”<sup>[16]</sup> यह तात्कालीन समाज में इनके महत्व को पुष्ट करता है। यद्यपि गणिकाओं का मुख्य लक्ष्य होता है धन प्राप्ति किन्तु संस्कृत साहित्य में अनेकों गणिकाओं का वर्णन आदर्श प्रेमिका के रूप में प्राप्त होता है। इनमें मृच्छकटिकम् की नायिका वसन्तसेना सर्वोपरि है, जो धनहीन परन्तु सद्गुणवान् सदाचारी चारुदत्त से प्रेम करती है। नाटक में मदनिका चारुदत्त को निर्धन कहकर गणिकाप्रेम के लिए अयोग्य ठहराती है तो वसन्तसेना “अतएव काम्यते। दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोके अवचनीया भवति।<sup>[17]</sup>” का उद्घोष करके धन को प्रेम के सामने महत्वहीन बताती है साथ ही “गुणः खल्वनुरागस्य कारणं न पुनर्बलात्कारः।<sup>[18]</sup>” इस उक्ति द्वारा गुण को प्रेम का कारण मानती है। यह वाक्य उसके हृदयस्थ निष्कपट प्रेम को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार गणिकाओं के केन्द्र में रखकर लिखे गये काव्य कलाविलास, नर्ममाला, समयमातृका, कुट्टनीमतम् इत्यादि काव्यों में भी कुछ गणिकाओं को आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है। कुट्टनीमत मे कदम्बिका नामक गणिका वंशपरम्परा में प्राप्त स्वर्ग के समान ऐश्वर्य को छोड़कर मृत्युपर्यन्त भट्टविष्णु नामक प्रेमी के साथ जीवन बिताती है। ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। वही दूसरी नायिका प्रेमी के मृत्यु हो जाने पर स्नेहवश अपना प्राण त्याग देती है। “रणेशिरसि हस्ते वज्रे वज्रोपमयन्त्रनिगतप्राणाः।” प्राणान्मुमोच गणिका न मन्त्रविधिना हृता नाम।।<sup>[19]</sup> इस प्रकार संस्कृत साहित्य में वर्णित अनेकों तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि गणिकार्ये समाज में मात्र मनोरंजन की साधन नहीं होती थीं अपितु वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी अहम भूमिका निभाती थीं। साथ ही इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि सामाजिक स्तर पर इनको वह स्थान प्राप्त नहीं था जो स्त्री को मिलता है। सभ्य समाज में इनका संसर्ग किसी भी कालखण्ड में पवित्र नहीं माना गया है। मनु के

अनुसार इनके यहाँ का अन्न ग्रहण करना भी वर्जित है, जो एक सभ्य समाज के निर्माण के लिए आवश्यक भी है। “गवा चान्नुपपद्मात् दुष्टान्नञ्च विशेषतः। गणान्नं गणिकान्नञ्च विदुसा च जुगुप्सितम्।।”<sup>[20]</sup> जैन एवं बौद्धकाल में गणिकाएं नगर की शोभा मानी जाती थी। राजा उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था और उन्हें अपनी राजधानी का रत्न समझता था।

### निष्कर्ष

चम्पा नगरी की देवदत्ता नामक गणिका इसी प्रकार की गणिका थी जो जन – सम्पन 64 कलाओं में निपुण, 29 प्रकार से रमण करनेवाली, 21 रतिगुणों से युक्त, 32 पुरुषोपचार में कुशल, 18 देशी भाषाओं पर में विशारत, नवयौवना और ऋंगार आदि से सम्पन्न थी। अपनी ध्वजा के साथ वह कर्णी रथ पर सवार होकर चलती थी, राजा ने उसे छत्र एवं चामर प्रदान किए थे, तथा अनेक गणिकाओं की वह स्वामिनी थी।<sup>[21]</sup> देवदत्ता चम्पा नगरी के मध्य में स्थित नन्दा पुष्करिणी पर जलक्रीड़ा करती थी। वह सुभूमिभाग नाम के उद्यान में वहाँ बने हुए कदलीगृह, लतागृह, आसनगृह, प्रक्षेपणगृह, प्रसाधन गृह, मोहनगृह, जालगृह और कुसुमगृह आदि में भ्रमण करते हुये आनन्दपूर्वक समय यापन करती थीं।

### संदर्भ सूची

1. डॉ० विमल किशोर मिश्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2015, 107
2. ज्योतिशचंद्र भार्मा, प्राचीन चम्पा, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2014, 4
3. वही।
4. वाजसनेयी संहिता
5. वात्सायन, कामसूत्र 1.3.16
6. अमरकोश
7. वात्सायन, कामसूत्र 1.3.17
8. ऋग्वेद 01.167.04
9. वात्सायन, कामसूत्र 1.03.18
10. वा०रा० –6.127.3–3
11. वा०रा० अयोध्याकाण्ड 36.03
12. शिशु०व०– 5.27
13. अर्थशास्त्र 2.27.41
14. कलाविलास 4.2
15. बु०च०, 2.31
16. रामायण– 2.51.21
17. मृच्छकटिकम् द्वितीय अंक
18. कुट्टनीमतम् 563
19. मृच्छकटिकम् 559
20. मनुस्मृति 4.209
21. ज्योतिशचंद्र भार्मा, पूर्वोक्त, पृ०स०–44